इकाई 11 पंजाब और धार्मिक जातीयता

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको जातीयता और धर्म की अवधारणाओं के अलावा बताया गया है कि सामाजिक स्तरीकरण का आधार बन सकते हैं। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप:

- जातीयता और जातीय पहचान के एक स्वरूप के रूप में धर्म के बारे में बता सकेंगे;
- स्तरीकरण के आधार के रूप में धार्मिक जातीयता के बारे में समझा सकेंगे;
- पंजाब में धर्म की राजनीति और जातीय पहचान के बारे में बता सकेंगे; और
- यह बता सकेंगे कि किन परिस्थितियों में धार्मिक जातीयता स्तरीकरण का आधार बनती है।

11.1 प्रस्तावना

मानव समाज विभिन्न प्रकार के सामाजिक समूहों का बना होता है। आधुनिक युग में इनमें सबसे महत्वपूर्ण राष्ट्र राज्य है। मगर राष्ट्र राज्य ही एकमात्र सामूहिक पहचान नहीं है जिससे कि समकालीन समाज में व्यक्ति अपने को पहचानता है, अपने आपको उसके साथ जोड़ कर देखता है। पश्चिम के औद्योगिक विकसित देशों और तीसरी दुनिया के तमाम विकासशील देशों सहित आज अधिकांश राज्यों में नाना प्रकार के सामाजिक समूह बसे हैं जिनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति और जीवन शैली है। दूसरे शब्दों में आज दुनिया के अधिकांश देश बहुजातीय समाज हैं। ऐसे समाज बहुजातीय समाज कहलाते हैं, जिनमें अनेक बड़े जातीय समूह एक साझी आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था राष्ट्र राज्य में साथ-साथ तो रहते हैं मगर सबकी अपनी अलग विशिष्टताएं होती हैं और सभी एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

11.2 जातीयता और जातीय पहचान क्या हैं

समाजशास्त्र और नृविज्ञान के क्षेत्रों में जातीयता को आधुनिक राष्ट्र राज्य के संदर्भ में ही लोकप्रियता मिली। इस शब्द का प्रयोग बीसवीं सदी के मध्य में अमेरिकी समाजशास्त्र में विभिन्न राष्ट्रीय मूल के लोगों को नाम देने के लिए आंरभ हुआ था। जातीय समूह कुछ सांस्कृतिक प्रतिमानों के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न समझे जाते हैं। आर.ए. शेर्महॉर्न के अनुसार जातीय समूह एक वृहत्तर समाज के अंदर एक

जनसमूह है जो अपनी एक वास्तविक या काल्पनिक मानता है वंशावली जो साझे ऐतिहासिक अतीत की समृति लेकर चलता है और सांस्कृतिक धुरी एक या अधिक प्रतीकात्मक घटक होते हैं जिसे वह अपनी सामूहिक अस्मिता के आदर्श के रूप में देखता है। नातेदारी के पैटर्न, शारीरिक समरूपता, धार्मिक बंधुता, भाषा या बोली रूप, जनजातीय गठबंधन, राष्ट्रीयता, व्यक्तिरूपी-विशेषताओं या इनका मिश्रण— ये सब इस तरह के प्रतीकात्मक घटकों के उदाहरण हैं। मगर इसके साथ-साथ समूह के सदस्यों में यह चेतना या बोध का होना भी उतना ही जरूरी है कि वे सभी एक ही किस्म के लोग हैं। जातीय समूह के सदस्यों में सिर्फ यह साझी पहचान ही नहीं होती कि वे अमुक समूह से संबंध रखते हैं, बल्कि समाज में अन्य जनसमूह भी उन्हें इसी रूप में देखते हैं।

लेकिन जातीयता सिर्फ प्रतीकात्मक या सांस्कृतिक पहचान तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि कुछ खास परिस्थितियों में यह राजनीतिक लामबंदी और संघर्ष का स्रोत बन सकती है। जैसा कि शर्मा कहते हैं, जातीयता के दो आयाम होते हैं: अप्रभावी और प्रखर। अप्रभावी स्वरूप में जातीयता पहचान की एक निरापद रीति है जो कुछ अपेक्षतया भिन्न सांस्कृतिक विशिष्टताओं पर आधारित है। अपने प्रकट या प्रखर स्वरूप में जातीयता सांस्कृतिक विशिष्टता के बोध पर आधारित राजनीतिक सत्ताधिकार हासिल करने की इच्छा को दर्शाती है। किसी जातीय समूह की विशिष्ट सांस्कृतिक चेतना विभिन्न सामाजिक और ऐतिहासिक कारणों से राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय बन सकती है। जैसे मुख्यधारा की संस्कृति में मिलकर अपनी विशिष्ट पहचान खो देने की आंशका, भेदभाव का अनुभव होना या स्वायत्तता और स्वशासन के लिए राजनीतिक महत्वकांक्षा का उदय होना।

11.2.1 जातीय पहचान के रूप में धर्म

धर्म को अक्सर 'पवित्र' या 'ईश्वर' से जोड़कर देखा जाता है। एंथनी गिडंस के अनुसार, "सभी धर्म में कुछ प्रतीक होते हैं जो आदरभाव या विस्मय की भावना उत्पन्न करते हैं और अनुयायियों के एक संप्रदाय में प्रचलित अनुष्ठानों या रस्मों से जुड़े होते हैं।" इस परिभाषा से पता चलता है कि धर्म के दो पहलू हैं। पहला, अनुष्ठानों और आस्थाओं की एक व्यवस्था है जिसमें पवित्र प्रतीक या परमेश्वर की धारणा भी शामिल रहती है। इसका दूसरा पहलू अनुयायियों का एक "संप्रदाय" है जो इस धारणा को मानते हैं। प्रख्यात शिक्षाशास्त्री एमीले दुर्खीम का भी कहना था कि धर्म विश्वास का साध्य पद मात्र नहीं होता। बल्कि सभी धर्मों में नियमित संस्कारिक और आनुष्ठानिक क्रियाकलाप होते हैं जिनमें अनुयायियों का एक समूह परस्पर मिलते हैं, भाग लेते हैं। इन आनुष्ठानिक क्रियाकलापों में उनकी नियमित भागीदारी ऐसे समूह के सदस्यों को एक संप्रदाय के रूप में बांधती है। राष्ट्र राज्यों विशेषकार जिनमें एक से अधिक धर्मों के अनुयायी रहते हों उनके समकालीन परिप्रेक्ष्य में ये धार्मिक संप्रदाय अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं और स्वयं को विशिष्ट जातीय समूहों के रूप में देखते हैं। इसलिए इन स्थितियों में धर्म जातीय पहचान का आधार बन जाता है।

11.3 स्तरीकरण का धार्मिक जातीय आधार: आधुनिक राष्ट्र राज्यों में अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक

जातीय विभेद निरपेक्ष नहीं होते। जैसा कि गिडंस कहते हैं, इनका संबंध साधारणतया संपदा और सत्ताधिकार में व्याप्त सुस्पष्ट विषमताओं से होता है। अधिकांश बहुजातीय समाजों का जातीय गठन कुछ इस तरह रहता है कि उनके नागरिक साधारणतया एक बड़े जातीय समूह और कई छोटे अन्य जातीय समूहों में बंटे होते हैं। यह राष्ट्र राज्य को एक 'बहुसंख्यक' और अनेक 'अल्पसंख्यकों' में बांट देता है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे अधिकांश समाजों में सत्ताधिकार पर नियंत्रण बहुसंख्यक समूह का ही होता है, लेकिन वहीं अल्पसंख्यक पूर्वाग्रहों और भेदभाव का शिकार बनते हैं। इसके फलस्वरूप जातीय समूहों में असमानता का संबंध जन्म लेता है और सामाजिक स्तरीकरण एक शक्तिशाली और प्रभावी बहुसंख्यक और अनेक अधीनस्थ जातीय अल्पसंख्यकों के रूप में होता है।

अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक का अर्थ हम अक्सर उनकी संख्या से लेते हैं लेकिन समाजशास्त्र की दृष्टि से उनमें विद्यमान भेद इससे कहीं ज्यादा होते हैं। गिडंस के अनुसार अल्पसंख्यक समूह की भिन्न विशेषताएं होती हैं:

i) इसके सदस्य अन्य लोगों द्वारा बरते जाने वाले भेदभाव के फलस्वरूप हानि की स्थिति में रहते हैं। भेदभाव तब होता है जब एक समूह के लोगों को प्राप्त अधिकार और अवसर अन्य समूह के लोगों को नहीं दिए जाते। उदाहरण के लिए एक स्वर्ण हिन्दू ऐसे व्यक्ति को अपना किराए का कमरा देने से इसलिए मना कर सकता है कि वह मुस्लिम या आदिवासी है।

ii) अल्पसंख्यक समूह के सदस्यों में सामूहिक एकता की, एक दूसरे से जुड़े होने की भावना होती है। पूर्वाग्रहों और भेदभाव का शिकार होने का अनुभूति उनमें प्राय: परस्पर निष्ठा और हित की भावना को बलवती बनाता है। अल्पसंख्यक समूह के लोग खुद को बहुसंख्यकों से 'एकदम अलग' मानते हैं।

iii) अल्पसंख्यक समूह प्राय: कुछ हद तक शारीरिक और सामाजिक दृष्टि से वृहत्तर संप्रदाय से पृथक रहते हैं। वे एक खास बस्ती, शहर या देश के किसी अंचल में एकत्रित रहते हैं। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूह के सदस्यों के बीच विवाह नहीं होते। अल्पसंख्यक विशिष्टता को बनाए रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते है।

कुछ समाजशास्त्रियों का मानना है कि अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की धारणाएं संख्यात्मक के बजाए सामाजिक हैं। कुछ परिस्थितियों में एक अल्पसंख्यक समूह आबादी का बड़ा और बहुसंख्य हिस्सा भी हो सकता है। इसके लिए दक्षिण अफ्रीका की नस्लवादी सरकार का उदाहरण दिया जाता है जिसके तहत मुट्ठी भर श्वेत लोगों ने वहां की विशाल अश्वेत बहुसंख्यक जनता पर शासन किया था। मगर ऐसी परिस्थितियां विरले ही बन पाती हैं। अल्पसंख्यक समूह ज्यादातर स्थितियों में ऐसे जातीय समुदाय ही होते हैं जिनकी संख्या कम होती हैं मगर यह बात भी ध्यान में रखी जानी चाहिए कि संख्या में छोटे सभी समूह जरूरी नहीं कि जातीय अल्पसंख्यक हों। किसी भी जातीय समूह को हम तभी अल्पसंख्यक कह सकते हैं जब वह उपरोक्त समाजशास्त्रीय प्रतिमानों में खरे उतरें। हमें इसके कई उदाहरण मिलते हैं, जहां छोटे जातीय समूह किसी देश के सत्ताधिकार ढांचे में इस तरह एकात्म रहते हैं कि उन्हें अन्य समूहों के मुकाबले किसी भी तरह के भेदभाव का सामना नहीं करना पड़ता है। इसी तरह स्थायी अल्पसंख्यक कोई नहीं होते। यह ज्यादातर राजनीतिक प्रक्रिया पर निर्भर करता है। राजनीतिक शासन और विचारधाराओं में परिवर्तन होने के समाज के सत्ताधाराओं में परिवर्तन होने से समाज के सत्ताधिकार ढांचे में विभिन्न जातीय समूहों की स्थिति बदल सकती है। एक लोकतांत्रिक समाज में अल्पसंख्यकों में यह भावना पनपने की संभावना कम रहती है कि वे उपेक्षित हैं और उनके साथ भेदभाव पूर्ण बर्ताव किया जा रहा है। इस तरह की भावना पैदा होने की संभावनाएं निरंकुश, एकाधिकारवादी शासन व्यवस्था में अधिक रहती हैं। फिर ऐसा भी हो सकता है कि कुछ समूह जो सत्ताधिकार ढांचे में अच्छी तरह से एकात्म हो चुके हैं वे कुछ समय बाद एक विशिष्ट पहचान बना लें और पूर्वाग्रहों और भेदभाव का अनुभव करने लग जाएं। इस प्रक्रिया को हम अल्पसंख्यकीकरण कहते हैं। इसी प्रक्रिया के दायरे में हम पंजाब के सिखों की स्थिति को समझ सकते हैं, जिन्होंने एक कालावाधि में एक अल्पसंख्यक समूह की विशिष्ट आत्मछवि बना ली है।

11.3.1 पंजाब में धार्मिक जातीय पहचान की राजनीति

आज का पंजाब पश्चिमोत्तर भारत में स्थित अपेक्षतया एक छोटा राज्य है। मगर छोटे आकार के बावजूद भी भारतीय राजनीति में पंजाब महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह राज्य पाकिस्तान की सीमा से लगा है। स्वतंत्रता के बाद 1947 में हुए देश के विभाजन का प्रभाव सबसे ज्यादा पंजाब पर पड़ा। नई सीमा के आर-पार लोगों ने दोनों ओर से भारी संख्या में पलायन किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पंजाब भारत का एक ऐसा राज्य है जहां की बहुसंख्यक आबादी एक अल्पसंख्यक धर्म के अनुयायी हैं। पंजाब की आबादी का लगभग 60 प्रतिशत सिख हैं। यही नहीं यह प्रांत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई प्रकार के जातीय आंदोलनों का साक्षी रहा है। मगर सबसे महत्वपूर्ण अलगाववादी आंदोलन यहां 1980 के दशक में हुआ। इन सभी आंदोलनों के चलते पंजाब के सिखों को एक पृथक जातीय और धार्मिक पहचान मिली है।

बोध प्रश्न 1

1) जातीय पहचान के रूप में धर्म के बारे में पांच पंक्तियों में लिखिए।

....

....

....

....

....

....

2) सामाजिक स्तरीकरण का आधार धर्म किस प्रकार से बनता है? पांच पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

....

11.4 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो पंजाब भारतीय उपमहाद्वीप के उन भागों में रहा है जिनमें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध जबर्दस्त जन-आंदोलन हुए। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से इस प्रांत में सामाजिक सुधार और विरोध आंदोलन हुए थे। इसी काल में सिखों में अपनी एक पृथक धार्मिक पहचान के प्रति चेतना जागी।

अभ्यास 1

पंजाब राज्य की पृष्ठिभूमि के बारे में पंजाबी मूल के मित्रों से पूछिए। पंजाब में हुए जिन महत्वपूर्ण सुधार और विरोध आंदोलनों के बारे में पता चलता है उन्हें अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

अंग्रेजों का शासन स्थापित हो जाने के बाद पंजाब प्रांत में सामाजिक और आर्थिक विकास की जो प्रक्रिया चली उसके फलस्वरूप सिखों में एक नया मध्यम वर्ग उभरा। इसी वर्ग ने प्रांत के सिखों के बीच एक सुधारवादी आंदोलन शुरू किया और सिख धर्म को हिंदू धर्म से अलग बताना शुरू कियां। इस आंदोलन का नेतृत्व सिंह सभा और मुख्य खालसा दीवान नामक दो सुधारवादी संगठनों ने किया। इनका मुख्य उद्देश्य सिखों के बीच आंतरिक संपर्क को शक्तिशाली बनाना और सिखों और हिन्दुओं के बीच स्पष्ट सीमारेखा खींचना था।

सांप्रदायिक सीमाओं को पुनर्परिभाषित करने की प्रक्रिया की परिणति सिखों के बीच कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक आंदोलनों में हुई। इनमें सबसे मुख्य 1920 के दशक में हिंदु महंतों के नियंत्रण से गुरद्वारों की "मुक्ति" का आंदोलन था। सिखों ने मांग की कि उनके सभी ऐतिहासिक गुरद्वारों के संचालन के नवगठित सिख गुरद्वारा प्रबंधक कमेटी के हाथों में सौंप दिया जाए। इसी आंदोलन के दौरान ही सिखों ने शिरोमणि अकाली दल के नाम से अपनी एक राजनीतिक पार्टी भी बना ली।

इस आंदोलन ने जहां एक ओर सिखों में एक विशिष्ट आत्म-छवि विकसित की वहीं दूसरी ओर इसने सिख लोगों को स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ने के लिए प्रेरित किया। इस आंदोलन में ब्रिटिश शासकों ने हिंदू महंतों का पक्ष लिया। इसके फलस्वरूप पंजाब के सिख औपनिवेशिक शासकों के विरुद्ध हो गए। अहिंसक आंदोलन होने के कारण अकालियों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का समर्थन मिला और यह व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न बन गया। लंबे संघर्ष के बाद आखिरकार उन्हें गुरद्वारों की महंतों से 'मुक्त' कराने में सफलता मिल ही गई।

बॉक्स 11.01

हिंदुओं और सिखों के बीच सामाजिक विभेदन की प्रक्रिया को तब और तेजी मिली जब 1921 में ब्रिटिश शासकों ने सिखों को पृथम निर्वाचन क्षेत्र घोषित कर दिया। इसी प्रकार औपनिवेशिक शासकों उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में जनगणना का जो चलन शुरू किया उसने भी पंजाब प्रांत में संप्रदायों के पुनर्निर्धारण में भूमिका निभाई। इसमें अंग्रेजों ने प्रशासनिक और राजनीतिक उद्देश्य से जनसंख्या को सुनिर्धारित धार्मिक संप्रदायों की श्रेणियों में बांटना शुरू किया। इस प्रक्रिया में पंजाब वासियों से कहा गया कि वे हिंदू या सिख पहचान को चुनें हालांकि दोनों संप्रदायों में स्पष्ट भेद नहीं थे।

11.4.1 स्वतंत्रता के बाद पंजाब

कई कारणों के चलते पंजाब प्रांत के जातीय गठन और विभिन्न धार्मिक संप्रदायों की पहचान में ब्रिटिश शासन काल में भारी परिवर्तन आए। 'विशेषकर 19वीं सदी और 20वीं के पूर्वार्द्ध के काल में एक धार्मिक पंथ से सिख एक पृथक जातीय समूह के रूप में उभरे। इस समूह ने वस्तुनिष्ठ रूप से विभेदित और व्यक्तिनिष्ठ रूप से स्वपरिभाषित संप्रदाय का रूप ले लिया था। यह प्रक्रिया आजादी के बाद भी जारी रही।

स्वतंत्रता के बाद राज्यों को भाषा के आधार पर पुर्नगठित किया गया लेकिन पंजाब इस प्रक्रिया से बाहर रखा गया। इससे सिख नाराज हो गए। वे ऐसा प्रांत चाहते थे जिसमें वे बहुसंख्यक हों। विभाजन के बाद प्रांत में आए भारी जनसांख्यिक बदलाव के कारण सिखों के लिए इस उद्देश्य को पूरा कर पाना संभव हो चला था। भारत विभाजन के साथ भारत और पाकिस्तान के बीच "आबादी का आदान-प्रदान" भी हुआ। पश्चिमी पंजाब में रहने वाले सिखों और हिंदुओं की समूची आबादी सीमा पार से इधर आ गई और इसी प्रकारी मुस्लिम आबादी पाकिस्तान चली गई। इसके फलस्वरूप प्रांत के कुछ खास जनपदों में सिख बहुसंख्यक हो गए। अविभाजित पंजाब में सिख वहां की आबादी के कुल 13 से 14 प्रतिशत थे। मगर पश्चिमी जनपद पाकिस्तान में चले जाने के कारण विभाजन के बाद के भारतीय पंजाब में उनकी संख्या लगभग 55 प्रतिशत हो गई। अकालियों को इसमें सिखबहुल राज्य की मांग करने का मौका नजर आया। सो, उन्होंने सिखों का पंजाब के इस तरह से पुनर्गठन के लिए मोर्चाबंद करना शुरू कर दिया जिसकी सीमाओं में सिर्फ सिख बहुल जनपद ही शामिल किया जाए। मगर पंजाबी हिंदुओं ने सिखों की अपेक्षाओं से सहमति नहीं रखी, बल्कि उन्होंने जनगणना में हिंदी को ही अपनी मातृभाषा बताया। इसलिए अब अकालियों ने भाषा के आधार पर भी एक अलग सिख बहुल राज्य की मांग उठाई। लंबे संघर्ष के बाद पंजाब प्रांत को 1 सितंबर 1966 को विभाजित कर दिया गया। दक्षिण पंजाब के हिंदी भाषी जनपदों को मिलाकर एक नया राज्य हरियाणा बना दिया गया। पश्चिमोत्तर के कुछ पहाड़ी जिलों को हिमाचल प्रदेश में मिला दिया गया।

बॉक्स 11.02

नए पंजाब राज्य में अब सिख स्पष्ट बहुमत में थे। लेकिन हिंदुओं की संख्या भी कम नहीं थी। सिखों का यूं तो राज्य की राजनीतिक संस्थाओं में स्पष्ट वर्चस्व रहा है लेकिन अर्थव्यवस्था पर उनका दखल आंशिक ही था। पंजाब का जनसांख्यिक और आर्थिक ढांचा कुछ इस तरह रहा है कि कृषि भूमि तो लगभग पूरी तरह से सिखों के नियंत्रण में है, लेकिन शहर का व्यापार हिंदुओं की बनिया जातियों के लगभग एकाधिकार में रहा है। यह आगे दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाता है। समग्रता में सिख यूं तो राज्य में स्पष्टत: बहुसंख्यक हैं लेकिन पंजाब के नगरीय क्षेत्रों में वे अल्पसंख्यक हैं। लगभग 69 प्रतिशत सिख गांवों में तो 66 प्रतिशत हिंदू शहरों/कस्बों में रहते हैं। अमृतसर और भटिन्डा जैसे सिख बहुल जिलों में यह पैर्टन और स्पष्ट नजर आता है।

हरित क्रांति की सफलता ने हिंदुओं और सिखों के बीच तनाव को और बढ़ाया। खेती में आधुनिक प्रौद्योगिकी और विधियों के प्रयोग से भूमि की उर्वता बेहद बढ़ गई। पारंपरिक खेती को त्याग कर किसानों ने अब नकदी फसलों को उगाना शुरू किया और अपने बेशी उत्पादन को बेचने के लिए मंडियों में ले गए। बदले में उन्हें शहर की मंडियों से आधुनिक सामान, जैसे रासायनिक खाद, उन्नत किस्मों के बीज और कीटनाशक खरीदने पड़ते थे। मंडियों में व्यापारी लोग ज्यादा प्रभावशाली थे। इसलिए विशेषकर

छोटी जोत वाले किसान को अपनी जरूरतों के लिए व्यापारियों पर आश्रित होना पड़ा। उन्हें व्यापारियों से अक्सर कर्ज लेना पड़ता था। राजनीतिक रूप से हावी किसानों को महसूस हुआ कि व्यापारियों से यह नया संबंध उन्हें उन पर निर्भर बना रहा है। सिख किसानों और हिंदू व्यापारियों के बीच इस आर्थिक द्वंद्व को कुछ लोगों ने साम्प्रदायिक नजरिए से भी देखा। कुछ विद्वानों ने 1980 के दशक में सिखों में भड़के उग्रवादी आंदोलन को इसी कारण से जोड़ कर देखा है।

जिला	हिंदू			सिख		
	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी
भटिंडा	22.56	12.92	61.13	76.93	86.67	37.96
अमृतसर	23.43	8.23	60.31	74.22	89.29	37.65
संगरूर	27.14	21.25	50.25	66.90	75.20	34.33
लुधियाना	33.22	16.88	63.82	65.71	82.47	34.34
फिरोजपुर	33.58	24.02	72.22	65.07	74.82	25.69
कपूरथला	38.02	28.45	69.69	61.26	70.80	29.68
रोपड़	43.49	39.21	67.46	55.61	60.10	30.51
पटियाला	44.37	37.49	63.92	54.24	61.03	34.93
गुरदासपुर	48.02	40.94	75.90	44.82	51.03	20.38
जालंधर	53.91	44.91	76.49	440.90	54.73	24.04
होशियारपुर	59.25	57.13	74.65	39.38	41.60	23.23
पंजाब कुल	37.54	28.56	663.39	61.21	69.37	30.79

स्रोत: डीसूजा, समीउद्दीन सं. 1985 पृ. 54

11.4.2 उग्रवाद का उदय

पंजाब प्रांत के सिखों में 1980 के दशक में धार्मिक जातीय आधार पर एक और शक्तिशाली आंदोलन हुआ। अकाली दल ने यह आंदोलन पंथनिरपेक्ष मुद्दों पर आरंभ किया। मगर धीरे-धीरे यह आंदोलन सिखों की सांप्रदायिक राजनीति करने वाले उग्रपंथी तत्वों के हाथों में चला गया और शीघ्र ही यह पृथकतावादी आंदोलन बन गया। 1980 दशक के आरंभ में अकालियों ने पंजाब से गुजरने वाली नदियों के पानी के बंटवारे के मुद्दे पर सिख किसानों को गोलबंद किया। इस आंदोलन में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने भी अकालियों का समर्थन किया था। अकालियों ने अपने संघर्ष को धीरे-धीरे वृहत्तर स्वायत्तता की मांग पर केन्द्रित करना शुरू कर दिया। उन्होंने यह मांग 1974 में आनंदपुर साहिब में सिख संगठनों के संगत में पास हुए प्रस्ताव के आधार पर की। इस प्रस्ताव को आनंदपुर साहिब प्रस्ताव कहा गया। आनंदपुर साहिब प्रस्ताव में भारतीय संघ के प्रांतों को और अधिक स्वायत्तता देने की मांग की गई थी।

इस प्रस्ताव में केन्द्र सरकार से मांग की गई थी कि वह शासन के अति महत्वपूर्ण क्षेत्रों को ही अपने नियंत्रण में रखे। जैसे करेंसी (मुद्रा) नोट जारी करना, सुरक्षा बलों का प्रबंध और विदेश नीति बनाना और उसका संचालन। शेष सभी महकमे राज्य सरकारों को सौंप दिए जाने चाहिए। अकालियों ने शुरू में आनंदपुर साहिब प्रस्ताव को एक पंथ निरपेक्ष ढांचे के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें भारतीय संघ के सभी राज्यों के लिए अधिक स्वायत्तता और सत्ता के विकेन्द्रीकरण की मांग की गई थी। मगर केन्द्र सरकार ने

आनंदपुर साहिब प्रस्ताव में अलगाववाद के संकेत देखे और अकालियों की राजनीतिक मंशा उसी नजर में संदिग्ध बन गई।

स्वर्ण मन्दिर में संयुक्त अकालीदल की बैठक
साभार : आई. टी.

इस दौरान सिख राजनीति में एक नया रुझान तेजी से उभरने लगा। संत जरनैल सिंह भिंडरवाले नाम के सिख धार्मिक उपदेशक के नेतृत्व में सिखों के लिए एक पृथक राष्ट्र की मांग को लेकर उग्रवादी आंदोलन शुरू हो गया। भिंडरवाले का उदय उसके अनुयायियों और निरंकारी पंथ के बीच धार्मिक संघर्ष से हुआ था। निरंकारी पंथ हिंदुओं और सिखों की एक सुधारवादी धार्मिक धारा है। कांग्रेस के कुछ नेताओं ने यह सोचकर भिंडरवाले को संरक्षण दिया कि वह सिख धार्मिक राजनीति में अकालियों का विकल्प बनेगा। मगर फिर शीघ्र ही भिंडरवाले ने स्वतंत्र रूप से काम करना शुरू कर दिया और एक पृथक राष्ट्र खालिस्तान की खातिर सिख युवकों को आंदोलन के लिए प्रेरित करने लगा। इसके लिए उसे सीमा पार से भी सहायता मिली। उग्रवादियों ने आतंक को राजनीतिक रणनीति के रूप में अपनाया। इसके लिए उन्होंने लोगों की चुनिंदा और अंधाधुंध हत्याएं करके जनमानस में आतंक का माहौल बनाया। मीडिया ने भी अकालियों से ज्यादा खालिस्तानियों पर ध्यान दिया। इस सबके फलस्वरूप पंजाब की राजनीति में अकाली अलग-थलग पड़ गए।

अभ्यास 2

अपने सहपाठियों से चर्चा कीजिए कि क्या राष्ट्र की भीतरी राजनीतिक समस्याओं के समाधान के रूप में अपनाई जाने वाली हिंसा को स्वीकार किया जाना चाहिए। आपको इस चर्चा से जो जानकारी मिलती है उसे अपनी नोटबुक में लिख लीजिए।

शुरू-शुरू में खालिस्तानियों को संरक्षण देने के बाद केन्द्र में तत्कालीन कांग्रेस सरकार को महसूस होने लगा कि स्थिति उसके हाथ से निकली जा रही है। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने सिख उग्रवादियों से निबटने के लिए बलप्रयोग करने का निश्चय कर लिया। सो, भारत सरकार ने संत भिंडरवाले को जो अपने हथियारबंद अनुयायियों के साथ अमृतसर स्थित स्वर्ण मंदिर में छिपा बैठा था गिरफ्तार करने के लिए सेना को कारवाई करने को आदेश दे दिया। सैनिक कारवाई को सरकार ने "ऑपरेशन ब्लूस्टार" का नाम दिया। इस कार्रवाई में उग्रवादियों से सीधी भिड़ंत की रणनीति अपनाई गई थी। आधुनिक अस्त्रों और टैंक इत्यादि से लैस भारतीय सेना ने सिखों के सबसे पवित्र स्थल पर 3 जून 1984 को धावा बोल दिया और सैनिक कार्रवाई का पहला चरण 6 जून की रात को समाप्त हुआ।

सेना ने स्वर्ण मंदिर में सिखों के त्यौहार के दिन प्रवेश किया जब अनेक तीर्थयात्री गुरुद्वारे के दर्शन के लिए वहां आए हुए थे। इसके फलस्वरूप उग्रपंथियों और सेना के बीच हुई गोलीबारी में महिलाओं और

बच्चों समेत कई तीर्थयात्री मारे गए। एक अनुमान के अनुसार इसमें सेना के 700 अधिकारी और जवान और 5,000 नागरिक हताहत हुए। जो अकाली नेता स्वर्ण मंदिर के अंदर थे उन्हें सेना ने सुरक्षित बाहर निकलने दिया लेकिन भिंडरवाले और उसके घनिष्ठ समर्थक उग्रपंथी इस कार्रवाई में मारे गए। इस काररवाई में चरमपंथी सिख नेतृत्व का सफाया तो हो गया पर प्रांत में व्याप्त राजनीतिक संकट वैसा ही बना रहा, बल्कि "ऑपरेशन ब्लूस्टार" के बाद उग्रवादी राजनीति ने और भी भयानक हिंसक रूप धारण कर लिया।

भारत सरकार की इस सैनिक कार्रवाई ने सिखों को और नाराज कर दिया और इसी के फलस्वरूप उग्रवादी संगठनों की संख्या और उनकी शक्ति बढ़ती गई। श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या के बाद सिख विरोधी दंगों में नरसंहार ने उग्रवादियों के जनआधार को और मजबूत बनाया। इन आतंकवादी संगठनों को सीमा पार से अत्याधुनिक हथियार और पड़ोसी देश पाकिस्तान से प्रशिक्षण भी मिला।

11.4.3 उग्रवाद और मानवाधिकार

लेकिन इस उग्रवादी आंदोलन को दिशाहीन होकर भटकते देर नहीं लगी। उग्रवादियों ने सिर्फ सुरक्षा बलों को ही अपनी गोलियों का निशाना नहीं बनाया बल्कि पंजाब और पड़ोसी राज्यों में रहने वाले साधारण नागरिक हिन्दू और सिख सभी उनकी आतंकवादी गतिविधियों का शिकार बने। चूंकि उग्रवादी ज्यादातर पंजाब के ग्रामीण क्षेत्रों के थे इसलिए सुरक्षा बलों ने साधारण नागरिकों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। नतीजनत: पंजाब वासी यह भी भूल गए कि शांति में रहना क्या होता है। उनके बुनियादी मानवाधिकारों का हनन आतंकवादियों और सुरक्षा बलों, दोनों ने किया। राज्य में डरा कर धन ऐंठना, अपहरण और अंधाधुंध हत्याएं रोज़मर्रा की घटनाएं हो गई। उग्रवादियों ने साधारण सिखों पर एक आदर्श आचार संहिता थोपने का प्रयास भी किया। इस प्रयास में उन्होंने सिख महिलाओं के पश्चिमी पोशाक पहनने पर प्रतिबंध लगाया। सिखों में विवाह किस तरह से कराए जाएं, इस तरह के कई मसलों पर उन्होंने निर्देश जारी किए। पर उग्रवादियों द्वारा शुरू किए गए इन सुधारों को आम सिख से कोई समर्थन नहीं मिला।

बॉक्स 11.03

उग्रवादियों से हमदर्दी रखने और उन्हें आश्रय इत्यादि देने के आरोप लगा कर पुलिस और अर्धसैनिक बलों ने साधारण लोगों को बेहद प्रताड़ित किया। उनके खिलाफ इस तरह के आरोपों की पुष्टि के प्रमाण नहीं होने के बावजूद उन्हें बख्शा जाता था। दूसरी ओर अगर कोई उग्रवादी गांवों वालों से आश्रय मांगता तो बंदूक के आंतक से लोग उसे आश्रय दे देते थे। करें तो मरें न करे तो भी मरें-उनकी ऐसी ही स्थिति हो गई। दोनों ही स्थितियों में उन्हें जुल्म का शिकार होना पड़ रहा था।

पंजाब में लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रक्रिया पूरी तरह से थम चुकी थी। और लंबे समय तक राज्य में कोई चुनाव नहीं हुए। स्वतंत्र खालिस्तान के उग्रवादियों के आंदोलन को पंजाब के साधारण सिख से खास समर्थन नहीं मिल पाया। स्वर्ण मंदिर पर भारत सरकार की सैन्य कारवाई और उसके बाद नंवबर 1984 के दंगों में दिल्ली आदि शहरों में हुए सिख नरसंहार से कई सिख हालांकि बेहद नाराज थे, लेकिन उग्रवाद की राजनीति से कोई खुश नहीं थे। लोकप्रिय राजनीतिक जनाधार न मिल पाने के कारण खालिस्तान आंदोलन 1980 दशक के उत्तरार्द्ध में धीरे-धीर बिखर गया। फिर 1990 दशक के आरंभ में अधिकांश उग्रवादी संगठन या तो टूटकर बिखर चुके थे या सुरक्षा बलों ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनका सफाया कर दिया था। इस प्रकार सिख उग्रवादी आंदोलन कोई राजनीतिक उद्देश्य पूरा किए बिना ही समाप्त हो गया। राज्य में लोकतांत्रिक प्रक्रिया को फिर से शुरू किया गया और 1996 में अकालियों ने दुबारा सरकार बना ली।

11.4.4 उग्रवाद के निहितार्थ

राजनीतिक रूप से यह आंदोलन असफल रहा और सिखों के लिए कुछ ठोस हासिल नहीं कर पाया, लेकिन सिख समुदाय और देश के लिए इसके अनेक निहितार्थ निकले। इसने समूचे देश को राजनीतिक संकट का अभूतपूर्व एहसास कराया। इसने विद्वानों और नीति-नियामकों को भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया की

फिर से समीक्षा करने के लिए बाध्य किया। सिख संप्रदाय के लिए 1980 के दशक का संकट विकट परीक्षा बन कर आया। "ऑपरेशन ब्लूस्टार" और दिल्ली तथा देश के अन्य भागों में हुए सिख विरोधी दंगों की त्रासदियां सहने के बावजूद इस 'संकट' ने उनकी पहचान को फिर से परिभाषित किया। अल्पसंख्यक जातीय समूह होने का बोध उनमें और गहराया। न सिर्फ सिख लोग अपने आपको एक विशिष्ट अल्पसंख्यक के रूप में देखने लगे, बल्कि अन्य संप्रदाय भी उन्हें इसी रोशनी में देखने लगे। "ऑपरेशन ब्लूस्टार" और सिख विरोधी दंगों से उन्हें पहली बार यह प्रमाण मिल गया कि उनके संप्रदाय के साथ भेदभाव बरता जा रहा है। इससे उनमें अपनी सामूहिक पहचान का बोध और मजबूत हुआ। वे अपनी हैसियत, स्थिति को जातीय अल्पसंख्यक की उस धारणा के काफी समीप देखने लगे जिसका उल्लेख हमने पीछे किया है। दूसरे शब्दों में उग्रवादी आंदोलन और 1980 के दशक के संकट ने भारत के सिखों के अल्पसंख्यकीकरण की प्रक्रिया को तेज किया।

देश में सिखों की आबादी दो प्रतिशत से कुछ ऊपर है। लगभग 75 प्रतिशत सिख पंजाब में शेष 25 प्रतिशत देश के अन्य भागों और विदेश में रहते हैं। चूंकि पंजाब में बहुसंख्यक हैं इसलिए अधिकांश सिखों को अपने अल्पसंख्यक होने का बोध दैनिक जीवन में नहीं हो पाता है। मगर चेतना के स्तर वे अपने आपको एक जातीय अल्पसंख्यक ही समझते हैं।

11.5 धार्मिक जातीयता को स्तरीकरण का आधार बनाने वाली परिस्थितियां

समाजशास्त्र के प्रतिष्ठित साहित्य में सामाजिक स्तरीकरण को साधारणतया "सामाजिक" श्रेणियों के जरिए देखा गया है। सामाजिक स्तरीकरण के सभी सिद्धांत वर्ग, पेशा या सत्ताधिकार जैसी श्रेणियों पर अधिक जोर दिया है। कुछ समय पहले से ही समाजशास्त्रियों ने सामाजिक स्तरीकरण की संरचना के निर्धारण में सामाजिक लिंग सोच (जेंडर) और जातीयता जैसे कारकों के महत्व को स्वीकार किया है। सामाजिक स्तरीकरण के आधार के रूप में जातीयता को दो भिन्न रूपों में काम करते देखा गया है। पहला, नस्लीय भेदभाव के रूप में जो कि लंबे समय तक पश्चिमी समाजों में मौजूद रहा है। दूसरा रूप है, धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक समूहों के लोगों से भेदभाव नस्लीय भेदभाव का एक चिर-परिचित उदाहरण अश्वेतों के साथ होने वाला भेदभाव है। अधिक पश्चिमी देशों में प्रभावी श्वेत आबादी ने युगों से अश्वेतों के साथ भेदभावपूर्ण बर्ताव किया है। नस्लीय भेदभाव कई स्तरों पर काम करता है। यह संगठनों के भीतर और वृहत्तर समाज दोनों में काम करता है। उदाहरण के लिए संगठनों में वरिष्ठ पदों पर 'श्रेष्ठ' नस्ल के सदस्य आसीन रहते हैं और निचले पदों पर अमूमन वे लोग आसीन रहते हैं जो "निम्न" नस्लों के होते हैं। नस्लवाद की प्रथा और विचारधारा के विरोध में कई तरह के राजनीतिक आंदोलन हुए हैं। इसके फलस्वरूप अश्वेतों के प्रति नस्लीय पूर्वाग्रह काफी कम हो गए हैं।

आधुनिक युग में धार्मिक अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव अनेक समाजों में व्याप्त है। इसने कई रूप धरे हैं, जैसे हिटलर के शासनकाल में चरम फासीवाद के तहत यहूदियों का सामूहिक संहार से लेकर भेदभाव के सूक्ष्म रूप। अधिकांश आधुनिक राष्ट्र राज्य यूं तो शासन-संचालन में धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों का पालन करने का दावा करते हैं लेकिन असल में उनकी उत्पत्ति मूलतः जातीय आंदोलनों से ही हुई है। यही नहीं आज अधिकांश राष्ट्र राज्यों में एक से अधिक जातीय मूल के नागरिक रहते हैं जो उन्हें बहुजातीय समाज बनाता है। मगर राजसत्ता में प्रायः विभिन्न जातीय समूहों की समान भागीदारी नहीं होती। यही भेद विषमताओं और जातीय आधार पर स्तरीकरण को जन्म देता है। भाषा के अलावा धर्म भी जातीय भेद का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत रहा है।

बोध प्रश्न 2

1) पंजाब में धार्मिक जातीयता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझाइए। पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

2) पंजाब में उग्रवाद के उदय के बारे में पांच से दस पंक्तियों में बताइए।

....

....

....

....

....

यह जरूरी नहीं है कि जातीय/धार्मिक भेद जातीय असमानताओं को जन्म देते हों। दुनिया के कई देशों में विभिन्न धार्मिक समुदायों के लोगों को लगभग बराबर का दर्जा हासिल है। सिर्फ कुछ विशेष परिस्थितियों में ही धार्मिक जातीयता सामाजिक स्तरीकरण का आधार बनती है। इसमें सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण *राजनीतिक शासन की प्रकृति* है। कोई समाज अगर धर्मनिरपेक्ष है तो उसमें धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक लोगों के साथ सोचे-समझे ढंग से भेदभावपूर्ण बर्ताव होने की संभावना नहीं होगी। मगर समाज अगर धर्मतंत्रीय और अलोकतांत्रिक हो तो उसमें धार्मिक जातीयता सामाजिक स्तरीकरण का एक महत्वपूर्ण आधार बन जाती है। ऐसे समाज में धार्मिक अल्पसंख्यक लोगों को सत्ताधिकार के पद-स्थान हासिल नहीं हो सकेंगे। मगर एक धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक समाज में भी किसी जातीय अल्पसंख्यक समुदाय के साथ भेदभाव बरता जा सकता है, विशेषकर अगर समाज के अन्य वर्गों में उसके प्रति पूर्वाग्रह व्याप्त हों। इसी प्रकार अगर किसी राजनीतिक गुट को अपने चुनावी लाभ के लिए एक जातीय समूह विशेष के खिलाफ अन्य समुदायों को मोर्चाबंद करने में फायदा नजर आता है तो ऐसी स्थिति में वह जातीय समूह भेदभाव का शिकार बन सकता है।

धार्मिक जातीयता को सामाजिक स्तरीकरण का आधार बनाने वाला दूसरा महत्वपूर्ण कारक देश का *जनसांख्यिक ढांचा* है। किसी देश में अगर एक बड़ा धार्मिक बहुसंख्यक समुदाय और उसके साथ-साथ अनेक धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय रहते हों तो उसमें धार्मिक जातीयता के स्तरीकरण का आधार बनने की संभावनाएं उस देश से अधिक होती हैं जिसमें अनेक धार्मिक समुदाय तो रहते हों मगर किसी भी धार्मिक समुदाय को बहुसंख्यक का दर्जा नहीं मिला हो। या फिर जनसंख्या सिर्फ एक ही जातीय सम्प्रदाय से संबंध रखती हो। तीसरा महत्वपूर्ण कारक *धर्म और अर्थव्यवस्था* के बीच संबंध है। अगर किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष के लोगों का अर्थव्यवस्था के उत्पादन साधनों पर नियंत्रण हो तो दूसरे समुदायों के बनिस्बत उन्हें समाज में अधिक शक्तिशाली स्थान हासिल होना लाजमी है। सबसे आखिरी और महत्वपूर्ण *सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारक* हैं। ये कारक ही समाज में जातीय/धार्मिक समुदायों के बीच संबंधों को तय करते हैं। जिस समाज में सहिष्णुता और परस्पर सम्मान को बढ़ावा देने वाले सांस्कृतिक मूल्य हों उसमें धार्मिक अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव की संभावना उस समाज से बेहद कम होती है जिसमें इस तरह के सांस्कृतिक मूल्य न हों। इसी प्रकार ऐतिहासिक स्मृतियों की अपनी भूमिका है। अगर किसी समाज का इतिहास जातीय विद्वेषों से भरा है तो उसका वर्तमान भी पूर्वाग्रहों से भरा रहेगा।

11.6 शब्दावली

जातीयता : साझी संस्कृति, साझा पैतृक इतिहास और एक-दूसरे से जुड़े होने की भावना।

पहचान : किसी समूह या व्यक्ति की जातीयता जैसे कारकों के आधार पर पहचान।

धर्म : एक विचारधारा से जुड़ा स्मृति पुंज जो अधिराष्ट्र यानी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दिशा में जाती है।

उग्रवाद : किसी उद्देश्य के लिए अपनाया जाने वाला आक्रामक और हिंसक नजरिया, जैसे, किसी जातीय समूह की स्वायत्तता की मांग।

11.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

गिडंस, ए., (1989) *सोशियोलाजी*, कैम्ब्रिज, पॉलिटी प्रेस

ग्रेवाल, जे. एस. (1994) *द सिख्स ऑफ पंजाब*, कैम्ब्रिज यूनि. प्रेस

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) धर्म के कुछ नियमित संस्कार और अनुष्ठान होते हैं जिन्हें उसके अनुयायी व्यवहार में लाते हैं। इस तरह के क्रियाकलाप अनुयायियों को एक समुदाय में जोड़े रखती है। जिन देशों में एक से ज्यादा धर्मों के अनुयायी हों वहां अनेक प्रकार की सांस्कृतिक पहचान जन्म लेती हैं, जो अपने आपको विशिष्ट जातीय समूहों के रूप में देखती हैं। ऐसी स्थिति में धर्म जातीय पहचान का आधार बनता है।

2) धार्मिक जातीयता राज्य के बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समूहों में बांटती है। इसमें बहुसंख्यकों के हाथों में सत्ताधिकार होता है लेकिन अल्पसंख्यक के साथ भेदभाव का बर्ताव होता है। इसके फलस्वरूप जातीय समूहों में असमानता का संबंध बन जाता है। और उसी के अनुरूप सामाजिक स्तरीकरण होता है। ऐसे में समाज में प्राय: एक शक्तिशाली और प्रभावशाली बहुसंख्यक और कई अधीनस्थ जातीय अल्पसंख्यक समूह देखने को मिलते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) पंजाब में ब्रिटिश उपनिवेशवादी शासन के खिलाफ जबर्दस्त आंदोलन हुआ था। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में यहां सामाजिक सुधार आंदोलन और जन विद्रोह हुए थे और इसमें एक पृथक धार्मिक पहचान का उदय हुआ। इससे साम्प्रदायिक सीमाओं का पुनर्निमाण हुआ। धीरे-धीरे सभी प्रमुख धार्मिक-राजनीतिक समूहों की रचना हुई, सिखों ने स्वतंत्रता आंदोलन में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था।

2) 1980 के दशक में अकाली दल ने एक पंथनिरपेक्ष आंदोलन शुरू किया जो धीरे-धीरे उग्रपंथियों के हाथों में चला गया। पहले जहां सिंचाई के पानी के अधिकार जैसे मुद्दों के लिए मांग होती थी उसकी जगह भारतीय राज्य से स्वायत्तता की मांग ने ले ली। इससे राज्य में हिंसक संघर्ष छिड़ गया जिसके फलस्वरूप 1984 में ऑपरेशन ब्लूस्टार हुआ। उग्रपंथियों पर सेना के हमले के बाद उग्रवाद अपनी दिशा से भटक गया क्योंकि यह निर्दोष नागरिकों को भी अपनी गोलियों का निशाना बनाने लगा।